NJESR/October 2021/ Vol-3/Issue-10 E-ISSN-2582-5836
DOI-10.53571/NJESR.2021.3.10.77-83

''संस्कृत वाड्मय में वर्णित आयुर्वेद शास्त्र की उपयोगिता''

नीरज
सहायक प्राध्यापक संस्कत
ज.हा.शास.स्नात.महाविद्यालय
बैतूल, म.प्र.
Email : ns623273@gmail.com

(Received:5september2021/Revised12September2021/accepted:2October2021/Published:14October2021)

संस्कृत साहित्य में अन्य साहित्यों (यूनानी, फारसी, इंग्लिश, उर्दू) आदि की तुलना में असीमित वैशिष्ट्य मुखरित होते हैं। जैसे –

1. **वैषयिक दृष्टि –**

   संस्कृत साहित्य में सर्वविध विषयों की सांगोपांग चर्चा मिलती है। परन्तु अन्य साहित्यों में एका³~xh चर्चा होती है। सर्वांगी नहीं होती है और विषय भी बहुसीमित होते हैं।

2. **विस्तार की दृष्टि –**

   संस्कृत साहित्य संक्षेप पद्धति का अनुपालन करता है। परन्तु टीकाओं प्रटीकाओं के माध्यम से विस्तृत होकर वह अध्येताओं में विषय के प्रति सौकर्यता प्रदान करता है। परन्तु अन्य साहित्यों में इस पद्धति का भी अभाव प्रतीत होता है।

3. **वैज्ञानिक दृष्टि –**

   से तात्पर्य संस्कृत साहित्य में प्रकृति से सम्बद्ध नियमों का उल्लंघन नहीं मिलता है। और विषय भी तर्काश्रित होता है। परन्तु अन्य साहित्यों में इसका अभाव प्रत्यक्ष मिलता है।

4. **पारम्परिक दृष्टि –**

   संस्कृत साहित्य के वैशिष्ट्य का मूल ''परम्परा'' है जो अद्यतन सजीवता को प्राप्त किये है। संस्कृत में श्रुतिपरम्परा, गुरुपरम्परा, शास्त्रपरम्परा, रीतिरिवाजों की परम्परा आदि ने संस्कृत साहित्य को गम्भीरता, साधुता, श्रेष्ठता, उपयोगिता आदि की दृष्टि से अन्य साहित्यों से उत्कृष्टता प्रदान की है।

5. **वैदिक दृष्टि –**

   संस्कृत साहित्य को एक धागे में सैकड़ों मोतियों को पिरोने का कार्य वेद से ही सम्भव है। संस्कृत साहित्य बहुविध परम्पराओं, बहुविध सम्प्रदायों, बहुविध शास्त्रों के माध्यम से ही विस्तार को प्राप्त हुआ। परन्तु सभी ने एक स्वर से वेदों का वेदत्व स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं की। परन्तु अन्य साहित्यों में एकता के केन्द्रबिन्दु का अभाव होने से उत्कृष्टता में न्यूनता लक्षित होती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि संस्कृत वा³~मय सागर से गहरा और नभ से भी व्यापक है। जिसमें मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए बहुविध ग्रन्थों का प्रचलन अद्यावधि जीवित है। अपौरूषेय वेदों से लेकर अद्य प्रभृति संस्कृत साहित्य, में प्रत्येक क्षेत्र में कार्य हो रहा है। इस विस्तृत लाखों वर्षीय साहित्य में आयुर्वेद विषयक जो कि जीवन का प्रत्यक्ष उपकारक है। बहु उपयोगी वर्णन संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट रूप में समुपलब्ध है।

आयुर्वेद –

आयुषः वेदः आयुर्वेद :– आयु विषयक ज्ञान प्रदाता वेद आयुर्वेद अर्थात् जिसके माध्यम से प्राणी अपने जीवन को स्वस्थ परमायुष्य और परम बल से युक्त बनाता है। वह आयुर्वेद है।

आयुर्वेद की परम्परा पर विचार करें तो आयुर्वेद विषयक चर्चा आयुर्वेद जिसे की '' ब्रह्मवैवर्तपुराण'' में पंचम वेद की संज्ञा दी है। [1]

पारम्परिक विभाजन के अनुसार आयुर्वेद का उपजीव्य वेद अथर्ववेद को माना है। '' इह खलु आयुर्वेदं नामोपांगमथर्ववेदस्य'' (सुश्रुत स.सू. 1.6) जिसमें की प्रत्यक्ष रूप से (ब्लूमफील्ड) महोदय के अनुसार (भैषज्य सम्बन्धी)68 सूक्तों का उल्लेख मिलता है। इसी वैषिष्ट्य के परिणाम स्वरूप अथवर्वेद के अपर नामों में एक नाम (भैष्ज्य वेद) भी मिलता है। [2]

''ब्लूम फील्ड महोदय'' ने कृत्यों (कर्तव्यों) की दृष्टि से अथर्ववेद के सूक्तों को 10 शीर्षकों में सम्मिलित किया है।

1. भैषज्यानि
2. आयुष्यानि
3. कृत्याप्रतिहरणानि
4. स्त्रीकर्माणि
5. साम्मनस्यानि
6. राजकर्माणि
7. प्रायश्चित्तानि
8. पौष्टिकानि
9. ब्रह्मण्यानि
10. कर्म काण्ड सम्बन्धी

इस प्रकार हम देखते है कि सर्वप्रथम आयुर्वेद से सम्बद्ध स्रोत अथर्ववेद में मिलते हैं। और उसके बाद आयुर्वेद की एक विस्तृत श्रृंखला हमारे सम्मुख उपस्थित है।

आयुर्वेद की परम्परा –

ब्रम्हा स्मृत्वाऽयुषो वेद प्रजापतिमजिग्रहत्।

सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्। (अष्टांग हृदय सू. 1–3)

---

1. आयुर्वेद चकार सः। कृत्वा तु पंचमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः। (ब्र.वै. 1,16,9–10)
2. ''अथर्ववेदों वेदः सोयमिति भेषजं निगदेत्। (सा. श्रौतसूत्र. 16.2)

ब्रम्हा ने आयुर्वेद का ज्ञान प्रजापति को प्रजापति ने अश्विनी कुमारो को अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को इन्द्र ने अत्रिपुत्रादिमुनियों को–इन्द्र ने जिन शिष्यों को शिक्षा दी वे 2 सम्प्रदायों में विभक्त हो गये।

1. आत्रेय सम्प्रदाय –
2. धान्वन्तर सम्प्रदाय –

आत्रेय सम्प्रदाय– प्रथम ग्रन्थ अत्रि शिष्य अग्निवेश द्वारा रचित (अग्निवेश संहिता) जो महर्षि चरक द्वारा उपबृंहित होकर चरक संहिता के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

धान्वन्तर सम्प्रदाय–प्रमुख समुपलब्ध ग्रन्थ जो कि धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत द्वारा रचित सुश्रुत संहिता प्रसिद्ध है।

इन दोनों ग्रन्थों को आयुर्वेद की बृहत्त्रयी के अन्तर्गत स्थान प्राप्त है। तृतीय ग्रन्थ (वाग्भट्ट) विरचित (अष्टांग ह्रदय) है। इन तीनों ग्रन्थों में स्वास्थ से सम्बद्ध विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा है। विभिन्न रोगों की औषध विद्यमान है। इनके उपरान्त भी आयुर्वेद से सम्बद्ध बहुविध चिकित्सा ग्रन्थ लिखे गये है। जिनमें (शाङ्र्गधर) विरचित शाङ्र्गधर संहिता आदि प्रमुख है। जिनमें कि नाड़ी तन्त्र विषयक चिकित्सा का चरक संहिता–सुश्रुत संहिता से इतर उपचार सामने आता है।

आयुर्वेद का प्रयोजन और उत्पत्ति –

आयुर्वेद का प्रयोजन आयुर्वेद शब्द से स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् आयु का रक्षक वेद आयु पद पर विचार करने पर–

आयु क्या है –

शरीर का सम्बन्ध जब तक प्राणों से युक्त है, अर्थात् जब तक शरीर में पाण वायु प्रवाहित हो रही है, उसी को आयु कहा है। और उस आयु का रक्षण जो शास्त्र करते हैं वे सब आयुवैदिक शास्त्र कहलाते है। [3]

आयुर्वेद शास्त्र की उत्पत्ति–

अथर्ववेद में प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि मुनष्य ने मनुष्य इतर जीवों (पशु–पक्षियों) आदि से औषधि शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था। व्यक्ति ने देखा की पशुओं में एक प्रकृत्या प्रेरणा होती है। जिससे वे अपने चारों ओर प्राप्त वनस्पतियों का सेवन करते हैं। इस प्रकार मनुष्य ने विभिन्न पशुओं से विभिन्न प्रकार की औषधियों की प्रेरणा ली। इसी से प्रेरित होकर चिकित्सकों ने पषु पक्षियों के ऊपर औषधियों के प्रयोगों की शुरूआत की और प्रयोग परीक्षा सुष्ठु होने पर मनुष्य के ऊपर चिकित्सा प्रारम्भ कर दी।

आयुर्वेद उत्पत्ति (मानव पूर्व)

प्रश्न है कि आयुर्वेद शास्त्र की उत्पत्ति मानव पूर्व है या मानव पश्चात्–

सुश्रुत संहिता–

अनुपाद्यैव प्रजा आयुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत्। (सु.सं.सू. 1)

काश्यपसंहिता– आयुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत् ततो विश्वानि भूतानि।

यथा– प्राणी के जन्म से पूर्व ही उसके जीवन के लिए अत्यावश्यक स्वरूपीय दूध माता के स्तनों में बनकर तैयार रहता है। उसी तरह प्राणी की उत्पत्ति से पूर्व उसके जीवन के लिए अत्यावश्यक स्वरूपीय आयुर्वेद शास्त्र उत्पन्न हो गया था। प्रमाणित होता है कि आयुर्वेद शास्त्र मानव उत्पत्ति से पूर्व वर्तमान था।

---

3. शरीरप्राणियोरेवं संयोगादायुरुच्यते। कालेन तद्वियोगाच्च पå्चत्वं कथ्यते। (शाङ्र्गधर सं. पू.ख.अ.5.52)

आयुर्वेद शास्त्र का अष्टांगों में विभाजन–

वेदों के सूक्तों के ऋषि (जो कि मन्त्र दृष्टा) है। अग्नि, वायु, इन्द्र, रुद्र, अश्विनी, वरुण ये सब पारंगत वैद्य रहे हैं। इनके ग्रन्थ लिपिबद्ध नहीं है। लेकिन तद् तद् सम्बद्ध सूक्त के ये पूर्णवेत्ता और परीक्षक रहे हैं। वर्तमान समय में हम आयुर्वेद शास्त्र को अष्टांगों में विभक्त देखते हैं। पूर्व में ये शास्त्र एकरूप था। पश्चात् मतिह्रास के चलते इसकों अष्टांगों में विभक्त किया। [4]

आयुर्वेद के अष्टांग–

शल्यम्, शालाक्यम्, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतंत्रम्, रसायनतंत्रम्, वाजीकरणतंत्रम्। सुश्रुत संहिता के इस चर्चा से बोध होता है कि आयुर्वेद शास्त्र प्रारम्भ में सहस्त्र अध्यायों और 1 लाख श्लोकों में ब्रम्हा के द्वारा उपदेशित किया। पश्चात् शनैः शनैः कालक्रमानुसार अष्टांगों में विभक्त होता हुआ हमारे समक्ष लिपिरूप में प्राप्त है।

आयुर्वेद के आठों अंगों में कायचिकित्सा (Medicine) तथा शल्यतंत्र (Surgery) इन दो अंगों को जीवन के साथ विषेषरूप से सम्बन्धित होने के कारण इन दोनों अंगों को चिकित्सकों ने वैषिष्टय प्रदान किया है। और इन दोनों को प्रमुखता देकर इन दोनों अंगो से सम्बद्ध वैद्यक ग्रन्थों का प्रचलन हुआ।

कायचिकित्सा अंग विवेचन — शल्यतंत्र विवेचन

अग्निवेष संहिता — सुश्रुत संहिता आदि

इस प्रकार हम देखते हैं परवर्ति वैद्यकग्रंथों में इन दो अंग पर आश्रित वैद्यकग्रंथ निरन्तर लिखे गये।

आयुर्वेद शास्त्र की चिकित्सा प्रकिया –

आयुर्वेद शास्त्र की चिकित्सा पद्धति (तीन प्रमुख सूत्रों) पर आधारित है।

1. हेतुज्ञान–प्रथम जिस कारण से वह रोग उत्पन्न हुआ है, प्रथम उस रोग के कारणों की पहचान।
2. लिंगज्ञान–किसी व्यक्ति को कोई रोग हुआ है, उस रोग के चिह्नों की पहचान जैसे–यदि ''पीलियारोग'' में आंखों और नाखूनों का पीला पड़ जाना।
3. औषधज्ञान–''रोग'' में कौन सी औषधी उत्तम होगी इसकी जानकारी।

इन तीनों में द्वितीय (लिंगज्ञान) के पश्चात् ही (चिकित्सा) सफल होती है।

उक्तं च–

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।

प्रथम रोग की जानकारी पश्चात् औषध की व्यवस्था करें।

आयुर्वेदीय चिकित्सा में (तीन विधियों) का प्रयोग–

1. दैवव्यापाश्रय–

इस विधि में मन्त्र, मणिधारण यज्ञादि के माध्यम से उपचार किया जाता है।

2. युक्ति व्यापाश्रय–

रोगी के प्रकृति के अनुकूल औषध देकर रोगोपचार होता है।

3. सत्वावजय–

इस विधि से (मनोविकार) वाले रोगियों का उपचार किया जाता है। मन को अहितकारी विषयों से हराकर धैर्यादि सत्वगुणों से युक्त किया जाता है। एक मनोभाव की उत्पत्ति हो तो दूसरे मनोभाव को उत्पन्न करके उसे रोका जाता है।

शोक को धैर्य से।

भय को उत्साह से।

काम को क्रोध से।

क्रोध को प्रेम से।

---

4. खल्वायुर्वेदं नामोपांगमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्त्रमध्याय सहस्त्रं च कृत्वान् स्वयम्भूः ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चालोक्य नाराणं भूयोऽष्टधा प्रणीतवान्। (सु.सं.सू. 1.6)

यदि मानसिक तनाव को कम न किया जाये तो विभिन्न रोगों 90% उत्पन्न हो जाती है।
जैसे–

1. उच्चरक्तचाप
2. ह्रदयरोग
3. सिरदर्द
4. उदररोग
5. संधिषूल

आदि अनेक रोग सत्वावजय विधि के द्वारा हम इन रोगों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।
इस प्रकार इस त्रिविध चिकित्सा पद्धति से असाध्य से असाध्य रोगों को समाप्त कर दिया जाता है।

उपनिषदों में आयुर्वेद–

उपनिषद् शास्त्र प्रमुखरूप से मोक्ष शास्त्र है। परन्तु अन्य वैदिक शास्त्रों की भांति उपनिषदों में भी आयुर्वेद प्रचुर मात्रा में मिलता है।

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। [5]

उपनिषदों में अन्न को ब्रम्हारूप माना है। क्योंकि इस अन्नरूप औषधि पर ही तो यह शरीर रूपी भवन टिका हुआ है। इसलिए कहते है। जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।

उपनिषदकार इस बात विज्ञ थे कि सर्वविध रोगों का मूलकारण व्यक्ति का आहार है, इसलिए उपनिषद्कार ने औषधियों का राजा अन्न को बतलाया है।

तैत्तिरीयउपनिषद् में–

शरीर विज्ञान से सम्बद्ध चर्चा मिलती है। उपनिषदों में (पåच महाभूतों के समूह को शरीर) कहा गया है।
जैसे–

1. पृथ्वी–शरीर में कठोर अंश– 1. अस्थि, 2. मांस, 3. नाडी आदि
2. जल–शरीर में तरल अंश– 1. रक्त, 2. आलस्य, 3. प्यास आदि
3. अग्नि शरीर में उष्णजा– 1. भूख, 2. आलस्य, 3. प्यास आदि
4. वायु–शरीर में स्फूर्ति– 1. गति, 2. क्रियाशीलता आदि
5. आकाश–आवेगों का कारक– 1. क्रोध, 2. मोह, 3. भय आदि

आयुर्वेद में वर्णित त्रिविध दोष–

सम्पूर्ण सृष्टि की स्थिति 3 प्राणियों पर आश्रित है। ''सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'' सत्व, रजस् और तमस् सम रू‍प में विद्यमान रहते हैं तो (प्रकृति) अव्यक्त अवस्था में रहती है। जैसे ही इनमें विषमता आती है, वैसे ही इस सृष्टि की प्रक्रिया शुरू होती है। तथैव–सत्व, रजस् और तमस् के ही विकार त्रिविध दोष है। [6]

---

5. ब्रम्हानन्दबल्ली प्रथम अनुवाक (तैत्तिरीयउपनिषद्)

6. (वायुः पित्तं कफष्चेति त्रयो दोषाः समासतः।) –अष्टांग ह्रदय सू.अ. 1.6

शरीरदूषणाद्दोषाः (षांगर्धर सं. पूर्वख.अ.5.24)

वात, पित्त, कफ इन त्रिविध दोषों के कारण ही इस शरीर की स्थिति रहती रहती है।[7]

वात, पित्त, कफ इन त्रिविध दोषों के मूल कारण पंच महाभूत है। परन्तु मुख्यरूप से–

वायु , आकश – वात

अग्नि – पित्त

पृथ्वी , जल – श्लेष्मा (कफ)

1. **वायु दोष**–षरीर के दोषों एवं धातुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचाता है। वातप्रकृति वाला पुरूष कम बालों वाला होता है। क्योंकि वायु के रूक्ष होने से त्वचा भी रूक्ष हो जाती है। शरीर पतला होता है। ये बातों को जल्दी भूल जाता है। अल्पायु अल्प शक्ति और अल्प संतान वाला होता है।

2. **पित्त दोष**–(आहार पाक) आदि जो क्रियायें होती है। वे पित्त के कारण होती है। ताप गुण है, पर पित्त उसका अधिष्ठान है। पित्त प्रकृति वाले पुरूष के बाल अकाल में पक जाते है। क्योंकि पित्त की उष्मा से बाल शीघ्र पक जाते है। बुद्धिमान होता है। क्योंकि पित्त सत्व प्रधान होता है। स्वेद बहुत अधिक आता है। क्रोधी होता है। भूख, प्यास ज्यादा सताती है।

3. **कफ दोष**–इसके द्वारा शरीर के एक कोष को दूसरे कोष से जोड़ा जाता है। कफ के गुरू स्थिर होने के कारण गंभीरतापूर्वक कार्य करता है। शरीर से स्थूल अत्यंत बलशाली और अत्यंत स्निग्ध केशों वाला होता है।

शांङ्र्धर संहिता में नाड़ीतन्त्र –

शांङ्र्धर संहिता मध्य काल की रचना है। इस समय मुस्लिम विचारों से ओतप्रोत समाज था। जिसमें पर्दा प्रथा पुरजोर पर थी। ऐसे में चरक द्वारा प्रतिपादित अष्टविध तथा दशविध आतुर परीक्षा करना सम्भव नहीं था। इस कठिनाई को सामने रखकर सर्वप्रथम नाड़ी ज्ञान विकास शांङ्र्धर ने किया। नाड़ी जांच द्वारा ही यवन स्त्रियों के रोगों का निर्णय हकीम व वैद्य करने लगे। शांङ्र्धर संहिता के पूर्वखण्ड के तृतीय खण्ड में नाड़ी ज्ञान का वर्णन किया है तथा दोषानुसार भेद करते हुए नाड़ी के लक्षण बतायें है।

---

7. '' वायुःपित्तं कफश्चोक्त। शरीरो दोषसंग्रहः'' (चरकसूत्र अ.1.57)

नाड़ियों के विषेष लक्षण शांङ्र्धर संहिता पूर्वखण्ड अध्याय 3–

1. वायु विकार से उत्पन्न रोगों में नाड़ी की गति जोंक व सर्प के समान चलती है। अर्थात् टेढ़ी–मेढ़ी

2. पित्त विकार से उत्पन्न रोगों में नाड़ी की गति उछल–उछल कर चलती है।

3. कफ विकार से उत्पन्न रोगों में नाड़ी की गति मन्द चलती है।

4. तीनों दोषों के कुपित होने से उत्पन्न शन्निपात रोग में नाड़ी की गति तीतर और बटेर पक्षी की तरह तेज दौड़ती है।

5. साधारण ज्वर में नाड़ी उष्णता लिये हुए जल्दी चलती है। (ज्वरकोपेतुधमनीसोष्णा वेगवती भवेत्) इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृत वांगमय में आयुर्वेद शास्त्र को अच्छा स्थान प्राप्त है।